Chap-5

- पंचम - अध्याय -

"व्यक्तिगत जीवन-मूल्य"

"व्यक्तिगत जीवन-मूल्य"

जैसा कि हम प्रथम अध्याय में व्यक्तिगत मूल्यों के अन्तर्गत स्पष्ट कर चुके हैं कि व्यक्तिगत मूल्य "व्यक्तिवाद" की संकीर्ण परिधि से ऊपर उठकर विकासोन्मुख रहते ~~व्यक~~ और समाज को विकासशील बनाते हैं । वस्तुत: व्यक्तिगत जीवन-मूल्यों का तात्पर्य किसी स्वलक्ष्य या साध्य की प्राप्ति से नहीं होते और न ही ये स्वार्थ और संकीर्णता से परे जीवन के वास्तविक प्रतिमानो, आदर्शों तथा सदवस्तु से संबंधित होते हैं । इसीलिए व्यक्ति स्वतंत्रता, साहचर्य, सौन्दर्य मोक्ष, चेतना, आदर्श, आत्म ज्ञान, ईमानदारी, प्रेम , इन्द्रिय निग्रह, अहिंसा, दया ,करूणा, सद्भाव, सहयोग, मैत्री, साहचर्य तथा नैतिक आचरण संबंधी मूल्य परम्परा से हमें प्राप्त हैं । यह उल्लेखनीय है कि युग विशेष के साथ मूल्यानुभूति, सदवस्तु प्रतिमान, आदर्श तथा संकल्प आदि बदल रहे हैं । परिणामत: व्यक्तिगत मूल्यों के प्रति भी, बौद्धिकता के कारण , नयी दृष्टि पनप रही है और इस नये दृष्टिकोण के कारण ही परम्परागत जीवन-मूल्यों को नवीन चिन्तन से संपृक्त किया गया । अत: आज नीवीन चेतना सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है ।

पूर्ववर्ती तृतीय और चतुर्थ अध्याय में यह लक्ष्य किया गया है कि प्रथम कोटि के उपन्यासकारों ने मुख्यत: : सामाजिक समस्याओं को ही जीवन-मूल्यों की दृष्टि से कथावस्तु का माध्यम बनाया । यद्यपि जैनेन्द्र, अज्ञेय, अश्क, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, रांगेय राघव आदि उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से उपन्यास साहित्य में व्यक्तिगत चेतना का बीज-वपन अवश्य कर दिया था, किन्तु यह भावना सन् 1960 के पश्चात् के नई पीढ़ी के उपन्यासकारों को अधिकाधिक आकर्षित करती गई । जिसके फलस्वरूप साठोत्तर उपन्यासों में सामाजिकता के स्थान पर वैयक्तिक चेतना बलवती होती गई । जिनका चित्रण अँधेरे बंद कमरे, न आने वाला कल (मोहन राकेश), उसका घर (कान्ति वर्मा) उसका शहर (प्रमोद सिन्हा), राग दरबारी (श्री लाल शुक्ल) आधा गाँव (राही मासूम रजा), जल टूटता हुआ (राम दरस मिश्र) एक पति के नोट्स (महेन्द्र भल्ला) आपका बंटी (मन्नू भण्डारी), आदि उपन्यासों में इस दृष्टि से मिलता है ।

नये दृष्टिकोण एवं बौद्धिकता का प्रभाव

पूर्ववर्ती विवेचन से यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि ज्यों ज्यों पश्चात्य शिक्षा, विज्ञान, एवं उद्योगों का विस्तार होता गया और संयुक्त परिवार लघु होते गये, त्यो-त्यों स्त्री-पुरूष में व्यक्ति चेतना के साथ साथ नये भाव बोध उभरे, और उनमें बौद्धिकता का विकास स्वमेव ही होता गया । इससे सदभाव, दया, करूणा ,सहानुभूति, प्रेम आदि अन्य नैतिक मूल्यों को भी बदलते हुये परिवेश में परखा जाने लगा । इसलिए आज का मानव परम्पराग्रस्त मानव नहीं रहा है । वह तो गोदान के गोबर की तरह अपने पिता होरी को त्याग शहरी जीवन में रंग गया है । युगानुरूप समय के आलोक में अज्ञेय का शेखर जागा, नारी के रूप में शशि नवीन चेतना एवं नये व्यक्तित्व की छाप लिये हुए ~~कको~~ उपस्थित हुई । तत्पश्चात् भुवन रेखा के बनते बिगड़ते सम्बंधा, अस्तित्व की छाप में योके, सेलमा, पाल, जगन्नाथन् आदि व्यक्ति के अनेक पहलु परिलक्षित हो रहे हैं । हरवंश और नीलिमा के रूप में मानवीय सम्बन्धों में शून्यता दृष्टिगोचर हो रही है । मानवता, सहयोग, साहचर्य व मैत्री के स्थान पर नितान्त अजनबी,एकाकी की भावना को लेकर "वे दिन" और "क्यों फंसे", सफेद मैमने" आदि उपन्यासों में पशुवत् काम-कुण्ठा के साथ व्यक्ति को चित्रित किया गया है । वह त्याग, संयम, सदाचार, ईमानदारी,अच्छाई आदि मूल्यों को "अर्थगत" व "कामगत" आधार पर नकार रहा है । औ र इस विवश व्यक्ति की संवदेनाओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं आदि को समकालीन उपन्यासों में यथार्थ रूप से अभिव्यक्त किया जा रहा है । उनका संक्षेप में विवेचन यहां पर प्रस्तुत है :-

सन् 1960 ई0 के बाद के उपन्यासों में पुरानी मान्यताएं कम और नवीन प्रवृत्तियां अधिक दृष्टिगोचर हो रही हैं । समकालीन उपन्यासों में "काम" और "अर्थ" दो आधारों पर आधारित व्यक्ति चेतना को उसके संश्लिष्ट रूप में अव्यक्त किया जा रहा है । व्यक्ति चेतना, वर्गगत व्यक्ति परक और संश्लिष्ट रूप में अभिव्यक्ति देने वाले उपन्यासों की अपेक्षा उसे व्यक्तिगत,

आत्म चेतनावादी और विश्लिष्ट रूप में चित्रित करने वाले उपन्यासों की संख्या अधिक होती जा रही है ।[1]

व्यक्तिवादी चिन्तन पर आधारित "पचपन खम्भ, लाल दीवारें" और "रूकोगी नहीं"••राधिका" {उषा प्रियवंदा} उपन्यासों की नायिकायें, नारी स्वातंत्र्य व व्यक्ति चेतना के कारण परम्परागत संस्कारों को तोड़ती हैं । स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं विचारों वाली राधिका प्राचीन जीवन मूल्यों को बंधन स्वरूप मानती हुई कहती है - "तभी तो हमारे यहां कितनी लड़कियों का चरित्र पूर्णत: विकसित हो पाता है ? माता-पिता अपने ही विचारों को उन पर थोपते रहते हैं। रहा मेरा सवाल, मैं स्वेच्छापूर्ण जीवन की इतनी आदी हो गई हूं कि विघ्न सह नहीं पाती ।"[2] आर्थिक दृष्टि से स्वालम्बनी पत्नी अपने अस्तित्व के प्रति अधिक जागरूक है । वह अपने अस्तित्व को, पति से पृथक् समझ कर , विकासशील दृष्टि पना रही है । "क्यों फंसे" की बदर आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर होने के कारण अपने पति को तलाक दे देती है --"यह {बदर} भला क्या दबती, जिसने कट्टर परिवार और खूंखार बिरादरी की कत्ल की धमकियों की परवाह न की, उस ब्राह्मन से क्या दबती । इसने अवस्थी के साथ रहने से इन्कार कर दिया ।"[3] वह आधुनिक नारी है और उसके विचार हैं -"अपने वैयक्तिक मामलों में किसी का हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं करेगी ।"[4]

विज्ञान एवं पाश्चात्य प्रभाव के कारण यौन वृत्ति के प्रति नये दृष्टिकोण पनप रहे हैं । आज "काम" को शारीरिक आवश्यकता माना गया है । इस तथ्य को "डाक बंगला" की इरा के माध्यम से इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है -"यह महज एक शारीरिक आवश्यकता है , जिसे आदर्श का ताज पहना कर गरिमा प्रदान की गई है ।"[5] आज यौन वासना व्यक्ति के नये दृष्टिकोणों से जुड़ती जा रही है । भद्र महिलाओं का संबंध गुप्त रूप से समाज में भी चलता रहता है । भास्कर की मामी कहती है । प्राय: आज की शिक्षिता नारी परिवार की नैतिकता तथा मर्यादा को भग्न करती हुई यौन संबंध स्थापित करने में आकर्षित रहती है । भास्कर की मामी इस तथ्य को स्पष्ट करती हुई कहती है -" मेरा अनुमान है कि अस्सी प्रतिशत भद्र महिलाएं ऐसी स्थिति में

हैं केवल पति अधिकारों और समाज के कारण गुप्त संबंध रखती हैं ।"[6] यही नहीं जंगल की अंग्रेज़ी शिक्षिता नैना यौन चेतना के कारण अपने माता पिता, भाई माँ आदि के संबंध को नकारती हुई "एक जवान चुड़िहरे के साथ भाग गयी।"[7] इस प्रकार यशपाल के "क्यों फंसे" उपन्यास में सेक्स को शारीरिक आवश्यकता के रूप में प्रतिपादित करता है । "सफेद मेमने" "वे दिन" यात्राएं "मछली मरी हुई" जंगल आदि उपन्यास व्यक्तिगत स्तर पर यौन चेतना से भी प्रभावित है ।

व्यक्तिगत नये दृष्टिकोण स्वतंत्र भारत की राजनैतिक पैंतरेबाजी, राजनीतिज्ञों की गुटबंदी और पूंजीपतियों के जीवन में दृष्टव्य है ।[8] देश के पूंजीपतियों ने अपनी पूंजी के बल पर अपने व्यक्ति को शासन व्यवस्था के महत्वपूर्ण स्थानों पर बिठा रखे हैं ।"[9] यहाँ व्यक्तिपरक स्वार्थवृति का चित्रण है । स्त्री-पुरूष व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकता की पूर्ति तथा नये संबंधों के बीच नये दृष्टिकोणों को उपस्थित करते हैं । "बारह घण्ट" के विधवा बिन्नी व विधुर फण्टम परस्पर सहानुभूति के द्वारा आत्मीयता में जुड़ते हैं । और समाज के बंधनों की चिन्ता नहीं करते हैं । उनके व्यक्तिगत नये दृष्टिकोण हैं -" मैं चाहता हूँ सामान्य व्यक्ति की तरह मनुष्य के कर्तव्य को निबाहूँ, पर मुझे भी सामान्य व्यक्ति की तरह खड़े होने का सहारा चाहिये ।"[9] विज्ञान एवं आधुनिक शिक्षा के कारण व्यक्ति चेतना न केवल शहरों में अपितु ग्रामीण जीवन में भी परिलक्षित है । "राग दरबारी" "अलग अलग वैतरणी" " आधा गांव" "जल टूटता हुआ", "कभी न छोड़े खेत" आदि उपन्यासों के ग्रामीण परिवेश में व्यक्ति चेतना दिखाई पड़ती है । "राग दरबारी" का रूप्पन शिक्षित होने के कारण व्यक्ति चेतना से प्रभावित है । इसके अतिरिक्त उपन्यास के अन्य पात्र निजी स्वार्थ व नये पुराने विचारों से युक्त हैं । "जीवन में नैतिक दृष्टि एक कोने में पड़ी है । सभा सोसाइटी के वक्त इसपर चादर बिछा दी जाती है ।"[10] इस प्रकार नैतिक मूल्यों के प्रति नये दृष्टिकोण पनप रहे हैं ।

द्वितीय अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि विज्ञान से विकसित नये दृष्टिकोणों एवं तज्जनित परिस्थितियों का प्रभाव, भारतीय जन जीवन

के रहन सहन विचारों एवं भावनाओं पर पड़ा । इस प्रभाव ने मानव-मूल्यों को संकट में डाल दिया । विज्ञान के विकास ने नये विचार तथा नये दृष्टिकोण से परम्परागत जीवन मूल्य एवं आस्था को विश्रृंखलित कर दिया । "विज्ञान ने जिन आस्थाओं और मूल्यों को खण्डित किया है । उनसे कहीं सबल आस्था और मूल्यों को जन्म दिया है ।"[11] इस प्रकार विज्ञान ने मानव को तर्कशील बनाया और भावनात्मक संबंधों को नकारता हुआ, बौद्धिक हो गया । इसके कारण ही व्यक्ति के आचार विचार, व्यवहार, आदर्श तथा धर्म में परिवर्तन आया । "क्यों फंसे" पुनैया का स्वीकारता है कि "वास्तव में नारी को स्वतंत्रता और समानता का अवसर कानूनों में नहीं संतति निरोध के विकास ने ही दिये हैं ।"[12] यौन संबंध पहले संतति की आवश्यकता के लिए किया करते थे लेकिन इस युग में आनंद प्राप्ति के लिए करते हैं ।"आज संतति निरोध हमारे राष्ट्रीय और मानवीय धर्म और कर्तव्य बन गये हैं । यदि प्रेमिका या नारी की बेपरवाही से उसके गर्भ संकट में पड़ जाने की आशंका हो तो वे हमारी तरह नसबंदी करवा लें ।"[13] इस प्रकार आज लोक धारणाएं व विश्वासों के प्रति नये विचार बन रहे हैं ।

यह उल्लेखनीय है कि विज्ञान ने देवी, देवताओं, धार्मिक स्थानों और पादरी पुजारियों के प्रति जागरूकता दी है । आज वेदों में भी वैज्ञानिक सत्यों को खोजा जाने लगा है " पहले का मनुष्य वस्तु को चेतना रूप देकर उसे आत्मसात कर लेता था, जबकि विज्ञानोत्तर मनुष्य अपनी चेतना में वस्तु को वस्तु रूप में स्वीकार करने लगा । परिणामत: चेतना का वास्तीकरण हुआ । चेतना स्वंय वस्तु रूप बनने लगी ।"[14] युगीन परिवेश में प्राय: व्यक्ति के धार्मिक विचार टूटते जा रहे हैं । " आज के जमाने में धर्म कर्म सभी उठता जा रहा है ।... भगवान के भक्तों को लोग ओच्छी निगाहों से देखते हैं । पश्चिमी सभ्यता के चक्कर में लोग जात धर्म सभी भूलते जा रहे हैं ।"[15] "प्रश्न और मरीचिका" के शिक्षित , लता, उदय, सुरैया आदि पात्र प्रगतिशील होने के कारण कथा भजन कीर्तन पाठ तथा धर्म के विषय में नवीन दृष्टि लिए हुए हैं । "मुझे यह सब

ढोंग अच्छा नहीं लगता है ।[16] इस प्रकार समकालीन युग में विज्ञान ने नयी दृष्टि के कारण पुरानी मान्यताओं और धारणाओं को भौतिक धरातल पर नकारा है । तज्जनित परिस्थितियों से उत्पन्न भौतिक मूल्यों के समक्ष आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य धूमिल हो रहे हैं ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह लक्ष्य किया जा सकता है कि शिक्षा, विज्ञान, औद्योगीकरण, शहरीकरण एवं बौद्धिक चेतना के कारण व्यक्तिगत नये दृष्टिकोण उद्भूत हो रहे हैं । आधुनिक व्यक्ति सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक जीवन-मूल्यों को नकारता हुआ, स्वार्थ के सीमित क्षेत्रों संकुचित होता जा रहा है । उसके भावात्मक संबंध बौद्धिक चेतना के कारण फीके पड़ते जा रहे हैं । तर्कशील होने के कारण वह प्रत्येक वस्तु को वैज्ञानिक दृष्टि से परख रहा है । परिणाम स्वरूप जहाँ एक ओर परम्परागत जीवन-मूल्य विघटित हो रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर अंध विश्वास एवं अज्ञान जनित मान्यतायें नष्ट हो कर नवीन रूप धारण कर रही हैं ।

इन उपन्यासों के अतिरिक्त व्यक्ति के नये दृष्टिकोण और बौद्धिकता का प्रभाव " दायरे" सबहिं नचावत राम गोसाई" "अपने लोग" "बासी फूल" क मित्रोभरजानी "औरत एक :चेहरे हजार, "कच्ची पक्की दीवारें", "मछली मरी हुई", "वे दिन", "चिड़ियाघर", अँधेरे बंद कमरे", "अँधेरे पथ पर", आदि उपन्यासों में दृष्टिगत होते हैं । इनमें आधुनिक जीवन की संवेदनाओं नयी प्रवृत्तियों, नयी जीवन दृष्टियों और नयी मान्यताओं के प्रश्नों को उठाया गया है । इन व्यक्ति के नये दृष्टिकोणों, पाश्चात्य प्रभाव तथा सह-शिक्षा के कारण भारतीय समाज में स्वच्छंद यौन वृत्ति पनपी, जिसने हमारे प्राचीन जीवन-मूल्यों को प्रभावित किया ।

व्यक्तिगत जीवन में स्वच्छंद यौन चेतना

पूर्ववर्ती विवेचन के अन्तर्गत लक्ष्य किया जा चुका है कि मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्ति चेतना के आधार पर यौन वृत्ति को प्रमुख स्थान दिया जा रहा है ।

भौतिकवादी दृष्टि, फैशन परस्ती , पाश्चात्य-सभ्यता तथा संस्कृति के अंधानुकरण से व्यक्ति के दृष्टिकोण परिवर्तित हुए, यौन चेतना ने धर्म, पवित्रता, नैतिकता शील, कौमार्य, आदि मूल्यों की नयी परिभाषा प्रस्तुत की । आधुनिक युग में जहाँ व्यक्ति के परम्परा के प्रति नये दृष्टिकोण बने हैं, वहीं दूसरी ओर संयम, ब्रह्मचर्य तथा सदाचार आदि के प्रति नये विचार पनपे हैं । इन पर पाश्चात्य विद्वान फ्राड, एडलर युंग का सम्यक् प्रभाव भी पड़ा है । फ्रायडवादी सिद्धांत के अनुसार- "...... स्त्री पुरूष के जीवन में काम तृप्ति एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है । जिससे जीवन में शक्ति संतुलन स्थापित करती है । और व्यक्तित्व एवं चरित्र का निर्माण करती है ।"[17] इसीलिए उपन्यासों में यौन वृत्ति को सहज रूप में चित्रित किया गया है । परन्तु कहीं यह चित्रण उच्छृंखलता की सीमा को भी पार कर गया है । जिसका प्रभाव मानव-मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों पर पड़ा । समकालीन उपन्यासों में अंकित स्वच्छंद यौन वृत्ति को प्रस्तुत किया जा रहा है । "सफेद मेमने" उपन्यास में मुक्त यौन संबंध को उभारा गया है । इसमें रामौतार पोस्टमास्टर, जानवरों का डाक्टर, बन्ना आदि पात्र काम पीड़ित व्यक्ति के रूप में चित्रित हैं । इस उपन्यास में संभोग कभी खुले टीले पर तो झोंपड़ी में है । जानवरों का डाक्टर भैंस के साथ और बन्ना सन्दो के साथ खुले आम संभोग करता है ।[18] पूर्व युगीन उपन्यासों में सेक्स की अनुभूति गोदान में मेहता और मालती के चुम्बन तक सीमित थी । किन्तु सन् 1960 के बाद - यात्राएं,बेघर, शहर था, शहर नहीं था । उसका घर, एक पति के नोट्स, मछली मरी हुई, सूरजमुखी अंधेरे के, दूसरी बार, आदि उपन्यासों में सेक्स स्वातंत्र्य की बात बार बार उठायी गयी है ।

सेक्स स्वातंत्र्य का चित्रण "सूरजमुखी अंधेरे के" की रत्ती के साथ बचपन में बलात्कार हो जाने के कारण वह दैहिक सुख भोग के प्रति जड़वत् हो जाती है । उसके जीवन में अनेक पुरूष आते हैं किन्तु उसकी जड़ता को देखकर निराश हो जाते हैं । अन्त में वह दिवाकर के सहवास से उत्तेजित होती है । "नयी हो रत्ती... छलछलाते बढ़ बढ़ आते जल की स्तुति में दिवाकर ने रत्ती को भींचा, और गले

के बटन खोल डाले । हाथ से सुख दिया , सुख लिया । कमर के बंध खुले और बार बार उस जल थल को चूमते चले गये । नयी हो रत्तीन ने दिवाकर को चूमा होंठों से हाथों से वक्ष की खुरदरी मखमल को सहलाया....."[19] व्यक्ति जीवन में स्वच्छंद यौन चेतना का चित्रण "मछली मरी हुई" में भी इसी प्रकार मिलता है । पाश्चात्य प्रभाव के कारण भारतीय उपन्यासों में समलैंगिक यौनाचार का भी अंकन है । शीरीं, प्रिया, आदि पात्र समलैंगिक रत्ति क्रीड़ा करती हैं । शीरीं पति नहीं चाहती वह बड़ी बहन के साथ ही रति-क्रीड़ा करती है । "एक दिन बड़ी बहन ने बीयर से भरे गिलास के साथ समझाया कि दो औरतें भी परस्पर शारीरिक जीवन बिता सकती हैं । बड़ी बहिन ने तरीका बताया । अपने बताये तरीके पर आगे बढ़ी । शीरीं आश्चर्य चकित थीं । वह बेहद उत्तेजित थी । बहन जो करना चाहती थी, करने देती थी । तनिक भी इन्कार नहीं, जरा भी ऐतराज नहीं, कोई पुरुष शीरीं को इतनी शीतलता, इतनी शीतल उत्तेजना, इतनी उत्तेजक शारीरिक बेदना नहीं दे सकता था ।"[20] इस प्रकार युवा वर्ग सेक्स, उत्तेजना के कारण परम्परागत नैतिक मूल्य तथा आदर्श टूट रहे हैं । व्यक्ति चेतना के कारण स्थापित स्वच्छंद काम वृत्ति ने नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया ।

प्राचीन काल में नारी का मूल्यांकन उसके कौमार्य, पवित्रता व सदाचार पर आंका जाता था, किन्तु आधुनिक परिवेश में इनका महत्त्व कम होता जा रहा है । स्त्री पुरुष का देरी से विवाह होने के कारण नैतिक मूल्यों ,शारीरिक पवित्रता, कौमार्य , शील, आदर्श एवं सदाचार की भावना में परिवर्तन आ गया है । आज का युवा वर्ग प्रेम में स्वाभाविक स्वच्छंद यौन वृत्ति को मानकर, सामाजिक ,नैतिक तथा पारिवारिक मूल्यों को तोड़ रहा है । "रूकोगी नहीं राधिका" उपन्यास की नायिका राधिका, अन्तकाल की श्यामा, पत्थरों का शहर की इति, "क्यों फँसे" का भास्कर, बदर, भास्कर की मामी, "सूखेते हुए तालाब" की चेइनया, जंगल की नैना, आखिरी आवाज की निहाल कौर, डाक बंगला की इरा, मंत्रविद्ध की सुरजीत कौर आदि इसी कोटि के पात्र हैं ।

शिक्षिता आधुनिक नारी की स्वच्छंद यौन चेतना के विचारधारा के माध्यम से सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन मूल्य तथा संबंध टूट रहे हैं। "चिड़ियाघर" की श्रीमती रिजवी अपने जीवन में चार-चार सौहर रखना चाहती है। और कहती है -"वे खुद कमायें और अपनी कमाई का कुछ हिस्सा मुझे दें, उनको सिर्फ एक रियायत दी जायेगी कि वे मेरी सुविधानुसार मेरे साथ सो सकेंगे।[21] "डाक बंगला" उपन्यास में यौन व्यापार बतरा, शीला, इरा और विमल के माध्यम से चलता है। बतरा इरा के साथ, शीला के साथ, और विमल इरा के साथ अनैतिक शारीरिक संबंध स्थापित करते हैं। इरा कहती है --"बतरा के हाथ मेरी कमर पर आ गये थे ...... उफ! कितनी उष्णता थी स्पर्श में।"[22]

आधुनिक युग में अर्थ समस्या ~~अकल~~ के कारण भी मजबूरन काम वृत्ति स्वच्छंदता का रूप धारण करती जा रही है। "प्रश्न और मरीचिका" की रूपा "सीमाएं टूटती हुई" की जुली "डाक बंगला" की शीला, "सूखता हुआ तालाब" की चेइनया आदि ऐसी नारियाँ हैं जो धन कमाने के लिए पर-पुरुष की अंक-शायिनी बनना अनुचित नहीं समझती हैं।

उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि युगीन उपन्यासों में स्त्री पुरुष स्वच्छंद यौन वृत्ति का चित्रण गहराई के साथ किया गया है। इसके साथ साथ कामजनित कुण्ठा, सेक्स समस्या आदि को मनोवैज्ञानिक आधार पर उभारा गया है। "काम वासना" के कारण उत्पन्न पति पत्नी तथा प्रेमी प्रेमिका के बीच सेक्स स्वातंत्र्य, दाम्पत्य जीवन का विघटन, आपसी मनमुटाव आदि विसंगतियों तथा विद्रूपताओं का चित्रण :- बेघर, यात्राएँ, शहर था, शहर नहीं था। मुर्दाघर, रीछ, नाच्यौ बहुत गोपाल, जल बिन मीन प्यासी, आधा गाँव, अलग अलग वैतरणी, और एक:चेहरे हजार, अपने अपने अजनबी, जल टूटता हुआ, "राग दरबारी", कांचघर"; "एक प्यासा तालाब", तस्वीरें और सायें, अपने से भला, लोहे की लाशें, काले उजले दिन, किशनुली का ढाँट कच्ची पक्की दीवारें, मित्रोमरजानी, आदि उपन्यासों में अंकित है। इन उपन्यासों में अर्थगत, बौद्धिकता, पाश्चात्य अंधानुकरण आदि से प्रभावित

स्वच्छंद यौन वृत्ति का स्वर प्रमुख है । इन उपन्यासों में "काम" तथा "अर्थ" के आधार पर व्यक्तिगत, सामाजिक, धार्मिक ,नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन मूल्यों को नकारा गया है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि काम को शारीरिक आवश्यकता मानकर, संयम, पवित्रता, ब्रह्मचर्य, सदाचार तथा नैतिक मूल्यों को अस्वीकृत किया गया है । इसके फलस्वरूप परम्पराओं के प्रति विद्रोह की चेतना युगीन समाज में परिलक्षित है जिसपर यहां विचार किया जा रहा है ।

"परम्पराओं के प्रति विद्रोह की चेतना"

द्वितीय अध्याय में यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि परम्पराएं समाज से उद्भूत हो, समाज की व्यवस्था को अनुप्राणित करती हुई, पीढ़ी दर पीढ़ी, हस्तांतरित होती रहती हैं । भारतीय समाज में मध्य काल से ही कुछ परम्पराएं यथा - विवाह, दहेज प्रथा, विधवा तिरस्कार, बाल विवाह, आज्ञापालन, संयुक्त परिवार आदि सामाजिक और धार्मिक परम्पराएं विद्यमान हैं । किन्तु पूर्ववर्ती युग में विभिन्न धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों के द्वारा इन परम्पराओं के प्रति नये दृष्टिकोण बनने लगे, जो साठोत्तर युग में आते आते विद्रोह के स्वर में परिवर्तित होने लगे । यहां यह कहना समीचीन होगा कि नये परिवेश एवं व्यक्ति चेतना एवं आधुनिक चिन्तन के कारण भी परम्पराओं के प्रति भी विद्रोह की चेतना दृष्टिगोचर होने लगी, जिनका चित्रण साठोत्तर कालीन उपन्यासों में यथार्थ रूप से मिलता है ।

पूर्ववर्ती लेखक अपनी साठोत्तरी रचनाओं में उभरती हुई व्यक्तिवादी चेतना को लेकर तो चले, किन्तु समाज की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर पाये, जबकि समकालीन लेखकों ने अपनी कृतियों में परम्परागत जीवन मूल्यों के प्रति आक्रोश अभिव्यक्त कर रहे हैं । इन लेखकों के पात्र , युगीन परिवेश में अर्थहीन सिद्ध हो रहे--परम्परागत आदर्श, लोक-मान्यताएं, लोकाचार, पाप-पुण्य, पवित्र तथा धार्मिक स्थानों के प्रति मोह, संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति आदि भावनाओं को अस्वीकार कर रहे हैं । परिणामतः युवा पीढ़ी के समक्ष निराशा, कुण्ठा,

तनाव,तथा दिशाहीनता की स्थिति उपस्थित हो गयी, यही कारण है कि युवा पीढ़ी दुविधात्मक स्थिति में कहीं स्वीकार कर रही है तो कहीं नकार रही है । इस संघर्ष एवं टकराहट का चित्रण साठोत्तरी उपन्यासों में यर्थाथ रूपेण मिलता है :-

आधुनिक युग में अर्थ-संकट ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि पति-पत्नी दोनों का धनोपार्जन करना आवश्यक हो गया है । नारी के आत्मनिर्भर होने, तथा व्यस्तता के कारण, वे अपने दाम्पत्य जीवन का निर्वाह भली-भांति नहीं कर पा रहे हैं । परिणामत: परम्परागत पारिवारिक मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगगया है । जिसका चित्रण मोहन राकेश के "अंधेरे बंद कमरे" में मिलता है । हरवंश और नीलिमा को आणुविक परिवार भी बंधन स्वरूप लगता है । विदेश जाते समय जहाज के डैक पर अपनी पत्नी नीलिमा को पत्र लिखता है - "मुझे बहुत दिनों से लग रहा था कि हम दोनों साथ साथ रहकर सुखी नहीं रह सकते । मगर अपने देश में रहते हुए सामाजिक परिस्थिति मुझे तुम्हारे साथ रहने को मजबूर कर रही थी । आज इस डैक पर खुले समुद्र के बीच मैं अपने आप को उस मजबूरी से मुक्त समझता हूं ।"[23] इस प्रकार वे तनावयुक्त स्थिति में अब तक जीते हैं । यही स्थिति नरेश महेता के "दो एकान्त" के विवेक और वानीरा के दाम्पत्य जीवन में उपस्थित होती है ।

आधुनिक व्यक्ति का परम्परागत परिवार के प्रति भी नये विचार बन रहे हैं । वह परिवार को स्थायी व भावनापूर्ण न मानकर मौसमी पौधा मानता है । ~~निम्न~~ गिरते महल (गुरूदत्त) में बाबू ब्रजलाल इस तथ्य को स्पष्ट किया है --"शीघ्र ही परिवार के बीस परिवार बनेंगे, पति पत्नी का ही रूप रह जायेंगे ।"[24] युगीन परिवेश में संयुक्त परिवार के प्रति विद्रोह की चेतना व्याप्त है । प्राय: आज का व्यक्ति , संयुक्त परिवार को अपने विकास में बाधक मान, उसे नकार चुका है । यहाँ तक की गांवों के संयुक्त परिवार भी विघटन की स्थिति से गुजर रहे हैं । "जल टूटता हुआ" में "रामकुमार को परिवार कलह युक्त होने से मूल्य संक्रमण की स्थिति से गुजर

रहा है ।.... इस झगड़ा ही झगड़ा, घर नरक सा बन गया है ।"[25] आज के परिवारों में स्नेह, मातृत्व-पितृत्व, वात्सल्य, कर्तव्यबोध, त्याग, एकता, सहयोग सद्भाव आदि टूट रहे हैं । "गिरते महल" में --"पारिवारिक बंधन ढीले हो रहे हैं । परस्पर स्नेह नहीं, रहा , जो पहले हुआ करता था,...... यों तो भाई-भाई में सम्पत्ति पर झगड़े पहले भी होते दिखाई देते थे, परन्तु बहन-भाई पति-पत्नी में सदा स्नेह का व्यवहार रहता था ।"[26] इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता, शिक्षा, बौद्धिकता, विज्ञान ,व्यक्ति-स्वातंत्र्य भावना ने परम्परागत सम्मिलित परिवारों को छिन्न-भिन्न कर दिया है । आर्थिक आत्म-निर्भरता, निर्भरता, नारी जागरूकता आदि ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

यह उल्लेखनीय है कि वैवाहिक जीवन को प्राचीन काल से ही जन्म-जन्मांतर का संबंध माना जाता था । किन्तु आज इस परम्परा के प्रति विद्रोह की चेतना परिलक्षित है । स्वच्छंद यौन चेतना, पाश्चात्य अन्धानुकरण आदि एक समझौता गन गया है । प्रेम विवाह, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि वैवाहिक नये संबंध स्थापित हो रहे हैं और इन परम्पराओं के प्रति नये दृष्टिकोण बनते जा रहे हैं । डाक बंगला की इरा इस निर्णय पर पहुंचती है कि --"शादी का आत्मा से संबंध नहीं है, अगर आत्मिक मिलन की बात होती तो शादियां करने की उम्र पचास के बाद होती, यह महज एक शारीरिक आवश्यकता है ।[27] इसी प्रकार इस परम्परा के प्रति आक्रोश "आपका बंटी" के अजय, और शकुन तथा " अंधेरे बंद कमरे" के हरवंश और नीलिमा इसी धारणा पर बल देते हैं । " चौहरे घेरे" की शिक्षित नारी अहल्या परम्परागत विवाह के स्थान पर "कोर्टशीप" को महत्त्व देती है । "दूखन लागे नैन" की वीणा इस धारणा के विमुख है । .."और विवाह भी क्या है ? एक हठ । एक गांठ । एक वैधानिक शपथ.... ।"[28] "क्यों फंसे" का पुनैया दो आत्मनिर्भर व्यक्तियों का आजीवन बंधे रहने को निर्थरक मानता है । आर्थिक संकट ने भी महानगरीय जीवन में परम्परागत वैवाहिक धारणा को विशृंखलित कर दिया है । महानगरीय जीवन चक्र में उलझते निम्न वर्गी व्यक्ति विवाह नहीं कर पाते, वे वैसे ही स्त्री

को घर में रखकर, शारीरिक संबंध स्थापित करते हैं । "ऋतुचक्र" की पैंतालीस वर्षीय अविवाहिता प्रतिमा और पचपन वर्षीय कुमार दादा बिना विवाह के साथ रहकर वैवाहिक जीवन का उपभोग करते हैं । इस प्रकार आधुनिक जीवन की जटिलताओं से उत्पन्न व्यक्तिगत नये दृष्टिकोणों ने परम्परागत वैवाहिक जीवन-मूल्यों को तोड़ा है ।

इस युग में प्राचीन जीवन मूल्य तेजी से विघटित होने लगे । कहीं कहीं ये मूल्य नवीन चेतना के कारण टूट रहे हैं तो कहीं कहीं अर्थ ,काम व राजनीतिक आधार पर टूट रहे हैं । "अमृत और विष" का रमेश युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ । प्राचीन अर्थहीन मान्यताओं, धार्मिक धारणाओं एवं विश्वासों को नकारता है । नवीन चेतना व आधुनिकता के कारण पुरानी परिपाटी को त्यागता है --"हिन्दुस्तानी जीवन का पुराना ढर्रा न पसन्द है ।"[29] आधुनिक परिवेश में ईमानदारी ,अच्छाई एवं परिश्रम के मूल्यों के प्रति हीन भावना परिलक्षित होती है । अँधेरे बंद कमरे की नीलिमा कहती है -"आज वह जमाना नहीं है जबकि योग्यता,मेहनत और ईमानदारी का कोई मूल्य था । आज की जिन्दगी में ये सब शब्द पुराने पड़ गये हैं ।"[30] युवा पीढ़ी परम्परागत मूल्यों के प्रति आक्रोशित है । "सुबह अँधेरे पथ पर" का राजेन्द्र मूक आक्रोश अभिव्यक्त करता है - "मेरे सामने आगत का सारा जीवन घूम जाता और तब मुझे धार्मिक परम्परागत, सामाजिक एवं नैतिक मूल्य खोखले प्रतीत होने लगते ...।"[31] "रूकोगी नहीं राधिका" उपन्यास की नायिका राधिका पुराने आचार-विचार व्यवहार, लोकाचार, शिष्टाचार आदि के प्रति नये विचार तथा नयी दृष्टि रखती है । वह कहती है --"जब अपने से छोटों के आचार विचार के प्रति आलोचक दृष्टि हो उठे, तो यह समझना चाहिये कि हम बूढ़े हो रहे हैं ।"[32]

भौतिकवादी युग में धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को नकार रहा है । जैसाकि हम कह चुके हैं कि धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्य कहीं तो विज्ञान एवं आधुनिक शिक्षा के कारण टूटे तो कहीं पाश्चात्य अनुकरण एवं बौद्धिकता के कारण

विघटित हुए । यही कारण है कि आज की युवा पीढ़ी नास्तिक हो गयी है । मन वृन्दावन का सूबंधु कहता है - "मुझे इस धर्म से लेना देना नहीं है ।"[33] इसी प्रकार "पत्थरों का शहर" की अनीता कहती है -"ईश्वर है कहाँ ?.···· तुमने कभी देखा है ···· सुनो····· ईश्वर की मृत्यु हो चुकी है और मृत ईश्वर कभी किसी को कुछ नहीं देता। आज बदलते हुए परिवेश में धार्मिक तथा आध्यात्मिक विचार बदल रहे हैं । "सामर्थ्य और सीमा" का देवलंकार धार्मिक सड़े गले विचारों में न आस्था रखता है और न विश्वास - "धर्म कर्म महज़ एक ढकोसला है ।"[34] नवीन चेतना तथा आधुनिक सभ्यता के कारण धर्म में परम्परागत छुआछूत की भावना तिरोहित होती जा रही है । चूनर की पीड़ा में इन्दर कहता है कि "स्पर्श से हमारा धर्म नहीं बिगड़ता । मैं कहता हूं अगर हमारा धर्म इतना कच्चा है तो रहेगा ही नहीं ।"[35] आगे इन्दर धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों को इस प्रकार नकारता है - "धरम अधर्म कुछ नहीं है, पाप-पुण्य एक दुकानदार, मन्दिर हम पण्डितों के भोजनालय और स्त्रियों के मिलने और गपसप के समान ···· ।"[36] प्रश्न और मरीचिका की सुरैया अपने नये विचारों को अपनी माँग के समक्ष रखकर कहती है - "कपड़े पहनकर मज़हब नहीं बदल जाता ।"[37] आज के व्यक्ति के नये संकल्प, नयी धारणा तथा न विचार धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति बन रहे हैं । पुरानी पीढ़ी जहाँ पाप-पुण्य,सत्यकर्म, देवी देवताओं का भजन एवं पूजन में आस्था रखती है, वहीं नयी पीढ़ी इन मूल्यों को घटिया कहकर नकार रही है । धारण तथा पापपुण्य को आध्यात्मिक मूल्यों से न जोड़कर तर्क की कसौटी पर कसे जा रहे हैं । "दायरे" में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है । "पाप और पुण्य समाज की व्यवस्था के कारण हैं ।"[38]

अतः आज के परिवेश में जीवनगत परिस्थितियों के बदलने से आध्यात्मिक धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक परम्पराएं जहाँ एक ओर टूट रही हैं, वहीं दूसरी ओर नयी चेतना एवं आर्थिक विषमता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण तर्क प्रधान नये मूल्य पनप रहे हैं । उपन्यासों में यद्यपि नयी पीढ़ी परम्परागत जीवन मूल्यों के प्रति आस्थावान् सी प्रतीत होती है , किन्तु जब उनके समक्ष

प्राचीन आदर्श, मान्यता, धारणा, संकल्प व मूल्य दोहरे रूप में उपस्थित होते हैं तो वे दुविधात्मक मन:स्थिति में फंसकर अपना आक्रोश अभिव्यक्त करते हैं। "सुबह अंधेरे पथ पर" का राजेन्द्र अमृत और विष के रमेश और रानी, "पत्थरों का शहर" के विवेक और "यह पथ बंधु था" का श्रीधर आदि पात्र इसके सफलतम उदाहरण कहे जा सकते हैं। इसके साथ साथ कुछ उपन्यासों में ऐसे पात्र भी अंकित हैं जो फैशनपरस्ती, पाश्चात्य अंधानुकरण, व्यक्ति स्वातंत्र्य, अस्तित्व बोध भौतिक मूल्यों से प्रभावित होने के कारण प्राचीन धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मूल्यों को नकारते हैं। ये पात्र "अंधेरे बंद कमरे" के हरवेश व नीलिमा, "अन्तराल" के कुमार व श्यामा, "पत्थरों का शहर" की इति, तृप्ता ,व रीमा, "रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका, व मनीष, "आपका बंटी" का शकुन व अजय, "डक बंगला" के इरा, बतरा, शीला आदि हैं। युवा पीढ़ी कहीं कहीं स्वच्छंद यौन वृत्ति व आर्थिक दबाव के कारण परम्परागत जीवन-मूल्यों को नकार रही है। कुछ समकालीन उपन्यासों- सफेद मेमने, क्यों फंसे, वे दिन, यात्राएं; सूरजमुखी अंधेरे के, जंगल, कोरा कागज़ मुरदाघर, आधा गांव, अलग अलग वैतरणी, आखिरी आवाज़-- में सफल चित्रण किया गया है।

संक्षेप में यह लक्ष्य किया जा सकता है कि समकालीन उपन्यासों में व्यक्ति चेतना नारी स्वातंत्र्य, शिक्षा तथा राजनैतिक चेतना के भी नवीन मूल्यों का विकास एवं अर्थहीन परम्पराओं के प्रति विद्रोह की चेतना परिलक्षित है। इसके साथ साथ औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं वैज्ञानीकरण ने परम्परागत मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगाया। लेखक सुदर्शन मजीठिया के शब्दों में --"आज के मनुष्य ने हर वस्तु को बौद्धिक कसौटी पर खरा उतारना आरम्भ कर दिया है।"[39]

समसामयिक उपन्यासों में युवा पात्र सामाजिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक परम्परागत प्राप्त मान्यताओं और रीति-नीतियों के प्रति विद्रोह अभिव्यकता कर रहा है। इसके पीछे क्या कारण है ,इसका संकेत द्वितीय अध्याय में दे चुके हैं।

यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि व्यक्ति चेतना, बौद्धिकता, नारी स्वातंत्र्य, पाश्चात्यीकरण, वैज्ञानिकीकरण शिक्षा आदि परम्परागत संयुक्त परिवार, जाति भेद, सगोती विवाह, प्राचीन मान्यतायें, यथा- स्वर्गनरक, पाप-पुण्य संबंधी, विधवा कलंक, तीर्थ स्थानों के प्रति मोह आदि, सामाजिक, एवं धार्मिक परम्परागत मान्यताएं एवं जीवन-मूल्य टूट रहे हैं । इसके साथ, कर्णछेदन, जनेऊ, संस्कार, आदि जाति कर्म संस्कार प्राय: लुप्त होते जा रहे हैं । युगीन परिवेश में समकालीन उपन्यासों में अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, दलित वर्ग उत्थान, नारी समानता, अतिथि सत्कार , भाई चारे, प्रेम, माता पिता के प्रति आदर, दाम्पत्य जीवन के प्रति नये दृष्टिकोण, बन रहे हैं । समसामयिक राजनीति के कारण शारीरिक पवित्रता, परम्परागत दाम्पत्य जीवन, रिश्ते नाते आदि को प्रभावित किया । भविष्य में तलाक ,समानता, वर्णऐक्य,कम संतान भावना, अविवाहित की कामना, प्रेम विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह आदि मूल्यों के विकास की सम्भावना अत्याधिक है ।

आधुनिक युग में उन्हीं परम्पराओं पर सर्वाधिक चोट पहुँची है जो रूढ़िगत संकीर्ण भावनाओं से युक्त एवं बिना किसी ठोस आधार के समाज में विद्यमान थीं । शाश्वत एवं स्वस्थ परम्परागत मूल्यों के प्रति आज भी पुरानी एवं नई पीढ़ी का आकर्षण किसी न किसी रूप में बना हुआ है । युगीन परि-स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में विद्रोह की चेतना प्रथम तथा द्वितीय कोटि के उपन्यास कारों के उपन्यासों में काफी सीमा तक अभिव्यक्त हो पायी है । द्वितीय कोटि के लेखकों ने युवा वर्ग के माध्यम से परम्पराओं को नयी मानसिकता तथा वैचारिक शक्ति से सम्पृक्त किया है । अत: कहा जा सकता है कि उपन्यासों में प्राय: सभी पक्षों पर विचार किया गया है । कर्ण छेदन, मुण्डन संस्कार आदि परम्परागत मान्यताओं का पक्ष यत्र तत्र मिलता है । युगीन परिवेश में जहाँ सर्वत्र जीवन मूल्य विघटन हो रहा है , तो पुरानी पीढ़ी के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्य अंकित हैं । नयी पीढ़ी विशेषत: आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्यों को नकारती हुई, सामाजिक मूल्यों को किंचितमात्र नवीन दृष्टि-कोण लिए हुए स्वीकार रही है ।

- - "मानसिक कुण्ठा एवं तनाव" --

जैसाकि द्वितीय अध्याय में यह लक्ष्य किया जा चुका है कि आधुनिक परिवेश की विषम स्थितियाँ तथा अन्तर्विरोधों के कारण टूटता हुआ व्यक्ति झुंझलाहट की स्थिति में फंसकर, किसी एक चरम लक्ष्य को ग्रहण कर पाने में सफलता प्राप्त नहीं कर पा रहा है । समकालीन मानव अनेक संगतियों विसंगतियों तथा जटिलताओं आर्थिक विषमताओं, भ्रष्ट शासन प्रणाली आदि के बीच जी रहा है । इसी कारण वह समाज में अधिक उद्वेलित एवं कुण्ठित है ।

"आज का मनुष्य एक ऐसे समाज में रह रहा है, जहाँ वह बाहर और भीतर, दोनों तरफ से टूट रहा है । वह संघर्षरत है, और पराजय से आतंकित, टूटते हुए व्यक्ति और उसके खिरे हुए समाज और खोखले मूल्यों के साथ संघर्षरत है । यही आज के जीवन की विशेषता है । समाज के रोग से व्यक्ति पीड़ित है, किन्तु वह जीवन का चैलेंज स्वीकार कर, सहज मानवीय दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं ।"[40] इसलिए साठोत्तर युग के उपन्यासों में व्यक्ति मन की विविध कुण्ठाओं, तनावों तथा अन्तर्विरोधों का चित्रण किया है । वह दुविधात्मक स्थिति में उलझा हुआ, धर्म, जाति, प्रेम, सद्भाव, सहानुभूति, त्याग, सेवाभाव, न्याय, दायित्व, पवित्रता तथा नैतिक मूल्यों को कभी नकारता है तो कभी स्वीकार कर रहा है । आधुनिक व्यक्ति की इन मन:स्थितियों का यथार्थ चित्रण समकालीन उपन्यासों में किया गया है ।

हम स्पष्ट कर चुके हैं कि वर्तमान समय में अर्थगत कामगत एवं राजनीतिक आधार पर अन्य अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं जिसके कारण व्यक्तिमन मन में कुण्ठा तनाव झुंझलाहट, एकाकीपन, अजनबीपन, वितृष्णा आदि दुर्बल प्रवृत्तियाँ उद्‌भूत हो गयी हैं । सुरेश सिन्हा के उपन्यास, "सुबह अँधेरे पथ पर" के परमात्मा बाबू अर्थाभाव में जीवनपर्यन्त संघर्षरत रहते हैं, कहीं-कहीं तो वे कुंठाग्रस्त, व तनाव के कारण बिखरे से लगते हैं -- उनकी कुण्ठा इस लाचारी के साथ अभिव्यक्त होती है:-"निम्न मध्यम वर्ग का हर प्राणी स्वप्न ही देखता

है । उसके साथ इतनी गरीबी और लाचारी है कि उसकी हर इच्छा अपूर्ण रह जाती है । अपना सोचा वह कुछ नहीं कर पाता । उसके जीवन में हर तरफ से अधूरापन रहता है । बस मन के संतोष के लिए वह सपना देखता है । उसकी भूल भुलैया में काल्पनिक सुख पाता है ।... पूर्ण कुछ नहीं होता और सारी जिन्दगी इसी भाग दौड़ में निकल जाती है ...।"[41] इस प्रकार परमात्मा बाबू का परिवार आर्थिक विषमता के कारण अन्तर्द्वंद्व और तनावों की स्थिति से गुजरता है । यह ऐसी स्थिति है जहाँ व्यक्ति पग पग पर टूटता है और उसे निरन्तर तनाव, घुटन एवं ठोकरें, मिलती हैं । नरेश मेहता के "यह पथ बंधु था" में भी आर्थिक कठिनाई के कारण टूटते पारिवारिक संबंधों से उत्पन्न तनाव संघर्ष ईर्ष्या ,द्वेष आदि का चित्रण मिलता है । श्रीधर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं संघर्षरत जीवन यापन करता है । घर लौटने पर स्वगत कहता है --"बड़े भाई ने उनके परिवार की अवमानना की उनकी पत्नी को चरित्रहीन कहा, क्योंकि वह किसी से कुछ बताकर नहीं गये थे । उसपर उन्होंने क्या अर्जित किया ? यह टूटा घर ? पानी उलचती दीवारें ? पत्नी की मृत्यु ? गुनी की अपंगत ?[42] इसप्रकार कुण्ठाग्रस्त हो जाता है । आज के स्त्री पुरूष के संबंध में विशेषत: दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न विसंगतियों व विडम्बनाओं के बीच, संबंधों में तनाव, बिखराव आदि का वातावरण उपस्थित हो गया है । मोहन राकेश के "अँधेरे बंद कमरे" में हरवंश व्यक्तिगत विषमताओं और संघर्ष से जूझता है । वह पारिवारिक विसंगतियों,विद्रूपतओं के अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित है । कुण्ठित होकर वह कहता है - "मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता हूँ कि लोग मेरे साथ बैठकर कला-संस्कृति की बातें करें और वास्तव में उनकी आँख मेरे घर की लड़कियों पर हो ।"[43] आधुनिक पति पत्नी के अन्तर्द्वन्द्व के साथ साथ लेखक ने नीलिमा और हरवंश के "एडजस्ट" न कर पाने के कारण उत्पन्न मानसिक तनाव का चित्रण यथार्थ रूप से किया है । नीलिमा नैसिक मूल्यों को नकारती हुई भौतिक मूल्यों को श्रेय देती है, वह आन्तरिक कुण्ठा तथा तनाव को इस प्रकार अभिव्यक्त करती है -"जिन्दगी तो इन विदेशी कलाकारों की है । हम लोगों की क्या जिन्दगी है ।"[44] इसी प्रकार "पत्थरों का शहर" के मनोज व तृप्ता के बीच मनमुटाव के कारण उत्पन्न

कुंठित एवं घुटनपूर्ण जीवन को व्यक्त किया है ।... गला घोंट दूंगा.. पुरुष होने का दम्भ भरकर इससे ज्यादा और कर ही क्या सकते हैं ? तुम्हारे जैसे आदमी के लिए अपनी पेंटिंग मैं छोड़ नहीं सकती । बड़े आये पति का अहंकार लेकर.... ।"45 इसी उपन्यास में नवल किशोर बाबू सशक्त एवं गरिमामय पात्र हैं, जो आदर्श एवं परम्परागत मूल्यों के सहारे अंत तक संघर्षरत रहते हैं । किन्तु अपने को असहाय और अकेला पाकर तनावयुक्त हो अपने विला पतन को त्याग कर चले जाते हैं ।

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत व्यक्ति जीवन में व्याप्त स्वच्छ यौन वृति में इस तथ्य को भली भांति स्पष्ट किया गया है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों, व्यक्ति चेतना, तथा पाश्चात्य प्रभाव से उत्पन्न फैशन ने संयम "काम वृत्ति" के बंधनों को तोड़ा है और युगीन उपन्यासों, स्वच्छंद यौन वृत्ति के कारण स्व-केन्द्रित कुण्ठा, तनाव, घुटन एवं अनास्थापूर्ण व्यक्ति का चित्रण मिलता है । निर्मल वर्मा का "वे दिन" की रायना और कथानायक के जीवन की विसंगतियों जटिलताओं, अजनबीपन, व एकाकीपन का चित्रण तो किया है ही साथ यौन संबंध से उत्पन्न मूल्यहीनता, तनाव आदि का चित्रण भी किया है । विदेशी सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध में व्यक्ति मन की संघर्षमय स्थिति का चित्रण उषा प्रियवंदा के "रूकोगी नहीं...राधिका" की राधिका के माध्यम से किया है। राधिका विदेशी पत्रकार डैन के साथ अमरीका चली तो जाती है ,परन्तु भारतीय संस्कार युक्त होने के कारण दो भिन्न संस्कृति व सभ्यता में आकर संत्रास, अन्तर्विरोधों, घुटन आदि से भर जाती है । राधिका के अर्न्तद्वन्द्व को लक्ष्य करके मनीश कहता है - "जब हम अपना देश छोड़कर बाहर जाते हैं तो पहले छः महीने एक कल्चरल शाक के दौरान बिताते हैं, जबकि हर कदम पर हमें अपना देश अपनी संस्कृति उँची दिखाई देती है । फिर हम उस देश में रहने के आदि हो जाते हैं । दो साल, ढाई साल, उस नये देश में रहकर उसके रीति-रिवाज के आदी होकर हम अपने देश में वापिस आते हैं, तो हमें एक छक्का दुबारा लगता है , कल्चरल शॉक ।"46 राधिका भी इसी दुविधा और विकल्प

में जीती है । उसका मानसिक संघर्ष तीव्र गति से चलता है । "सूरजमुखी अँधेरे के" की रत्ती के साथ बचपन में बलात्कार हो जाने के कारण बालिका की मानसिक कुण्ठाओं व तनावों को सहज रूप से उभारा गया है । बच्चों द्वारा चिढाए जाने पर वह चीखती, चिल्ला हुई अपनी साथियों को मारती, पीटती है । और शनैःशनैः दैहिक सुख के प्रति कुण्ठित हो जाती है - उसका तीखापन, कड़ुवापन, सब मर गये हैं । वह फीकी है । एक फीकी औरत । एक लड़की जो कभी लड़की नहीं थी । एक औरत जो कभी औरत नहीं थी ।"[47]

पति पत्नी के बीच मनमुटाव की स्थिति में बेटी की कुण्ठा, तनाव व उपेक्षित स्थिति का मार्मिक चित्रण "आपका बंटी" उपन्यास में किया गया है । "न तो वह डा० जोशी को पिता रूप में स्वीकार कर पाता है और न ही उनके बच्चों को भाई व बहिन के रूप में । वह डा० जोशी के साथ अपनी मां को हिलते मिलते देखकर और अधिक मानसिक कुंठित हो जाता है ।

जैसाकि पूर्ववर्ती अध्याय में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि स्वाधीनता के पश्चात् गांव में परिवर्तन आया, जमींदारी प्रथा टूटी, तो जमींदार मानसिक कुण्ठाओं से मुक्त, खोखले दम्भ के सहारे जीने लगे । साठोत्तरीपरान्त भ्रष्ट राजनीति ने ऐसा चक्र चलाया कि ग्रामीण जीवन, मूल्यहीनता के साथ साथ स्वार्थ, अजनबीपन, द्वेष, तनाव तथा कुंठा के विषैले वातावरण से भर गया । "सूखता हुआ तालब" का देव प्रकाश, अलग अलग वैतरणी के विपिन, अपनी प्रेमिका पुष्पा के न प्राप्त कर पाने के कारण बुझारथ और जैपाल सिंह जमींदारी के टूटने से, आधा गांव के तथाकथित जमींदार, रागदरबारी के रूप्पन, रंगनाथ आदि पात्र कुंठित एवं तनावपूर्ण जीवन जीते हैं । राजनीति के कारण उत्पन्न विषम परिस्थितियां, तनाव, कुण्ठा, आदि का चित्रण कमलेश्वर कृत काली आंधी और मन्नू भण्डारी कृत महाभोज में मिलता है ।

इन उपन्यासों के अतिरिक्त, रांगेय राघव का आखिरी आवाज, मोहन राकेश का अन्तराल, नरेश मेहता का दो एकान्त, गिरिराज किशोर का

"चिड़ियाघर",ममता कालिया का बेघर, विश्म्भर नाथ उपाध्याय का रीछ, भीष्म साहनी की कड़िया तमर, गिरिधर गोपाल का कन्दील और कुहासे, मणि मधुकर का सफेद मेमने, आदि उपन्यासों में, आर्थिक विषमता, स्वच्छंद यौन चेतना, राजनीतिक व्यक्ति स्वातंत्र्य आदि के कारण उत्पन्न जीवन संघर्ष जटिल मन:स्थिति में अनेक विद्रूपताओं के साथ मानव की संवेदनहीनता, हृदय-हीनता, अजनबी एकाकीपन तथा मूल्यहीनता का चित्रण किया गया है ।

उक्त विवेचन के आधार पर यह निर्दिष्ट किया जा सकता है कि समकालीन उपन्यासों में प्रमुखत: आधुनिक मानव की विवशताओं, अतृप्त आकांक्षाओं, अधूरेपन आदि को यथार्थ रूप से चित्रित किया गया है । पूर्ववर्ती उपन्यासों में जहां सामाजिक समस्याओं को प्रमुख रूप से स्थान दिया जाता था, वहीं समकालीन उपन्यासोंमें आधुनिक विषम परिस्थितियों के कारण उद्भूत व्यक्तिपरक समस्या प्रमुख रूप से अभिव्यक्त किया गया है । आधुनिक मानव फैशन परस्ती एवं व्यक्ति स्वातंत्र्य आदि के कारण धार्मिक, आध्यात्मिक एवं राजनीतिक मूल्यों अधिकांशत: नकार रहा है । किन्तु इनके स्थान पर नवीन मूल्य स्थापित न कर पानें के कारण और उचित नेतृत्व के अभाव में दिशाहीन भटकता वह तनाव संघर्ष, घुटन एवं दुविधात्मक स्थिति जी रहा है । भौतिक मूल्यों का आकर्षण, उसकी स्थिति और भी दयनीय बनाए हुए है । अत: आज का मानव परम्परागत जीवन-मूल्यों को कहीं कहीं नकारता हुआ और कहीं स्वीकारता हुआ विषम स्थिति में है ।

"व्यक्ति और समाज विषयक द्वन्द्व"

पूर्ववर्ती विवेचन में कह चुके हैं कि व्यक्ति, समाज में स्वतंत्रत रूप से जन्म लेता है और समाज में रहकर उसके आचार विचार, व्यवहार, आदि अर्जित करता है । समाज में उसके विकास के लिए कुछ नैतिक बंधन निर्मित किये हैं, जो व्यक्ति को अनुशासित तो करते ही हैं, साथ ही समाज की व्यवस्था को अनुप्राणित भी करते हैं । यद्यपि व्यक्ति समष्ट के लिये है, किन्तु जहां व्यक्ति अपने स्वतंत्रत विकास व हित के लिए प्रयास करता है, तो वहां वह समाज के

प्रति विद्रोह कर उठता है । वह उसकी रूढ़िगत परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा धर्म आदि को नकारता हुआ, विकासोन्मुख होता है, किन्तु समाज ऐसा करने में बाधक सिद्ध होता है, क्योंकि समाज की अपनी मान्यताएं अपने नैतिक बंधन होते हैं । इसलिए व्यक्ति व समाज एक दूसरे के पूरक होते हुए भी विरोधी बन जाते और उनमें परस्पर वैचारिक द्वंद्व की स्थिति उपस्थित हो जाती है । नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का द्वंद्व समकालीन उपन्यासों में प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है ।

प्राचीन काल में व्यक्ति समाज को समाज की दृष्टि से देखता था, जबकि आधुनिक व्यक्ति समाज को व्यक्तिगत दृष्टि से देखता है । समकालीन युग में "समाज साध्य और व्यक्ति साधन है" के स्थान पर "समाज साधन और व्यक्ति साध्य" की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है । यही कारण है कि वह समाज से संघर्ष करता हुआ, सामाजिक मूल्यों को तोड़ता हुआ, व्यक्तिवादी जीवन-मूल्यों को आत्मसात् करने लगा है । और समकालीन उपन्यासों में व्यक्ति व समाज विषयक इस द्वंद्व का चित्रण सूक्ष्मता व गहराई के साथ किया गया है । समाज, व्यक्ति से यह अपेक्षा रखता है कि वह उसके आदर्शों, नियमों मान्यताओं एवं मूल्यों का पालन करता हुआ अपने आप को और समाज को अनुशासित करे । समकालीन उपन्यासों में पुरानी पीढ़ी के पात्रों के माध्यम से सामाजिक उपेक्षाओं को अभिव्यक्त किया गया है । सुरेश सिन्हा कृत "सुबह अंधेरे पथ पर" में परमात्मा बाबू के माध्यम से सामाजिक प्राचीन मान्यताओं को अंकित किया गया है - "...... आदर्श झूठे नहीं होते, वे आदमी को नैतिक बल देते हैं, उसे ऊंचा उठाते हैं ।"[48] किन्तु समकालीन व्यक्ति जब इन आदर्शों को यथार्थ की भूमि पर उतरता न पाकर, निराशा से भर जाता है, वह अपने विकास व स्वहित के लिए स्वतंत्र रूप से प्रयास करता है और समाज से अपेक्षाएं रखता है, किन्तु जब उन अपेक्षाओं या आवश्यकताओं की पूर्ति समाज नहीं कर पता तो वह समाज के प्रति विद्रोह करता है । राजेन्द्र का कथन कितना सटीक है - "यथार्थ की भयंकरता आदमी को तोड़ देती है और व विभ्रान्त होकर

पंगु बन जाता है । उस समय कोई भी आदर्श उसे न तो दिशा दे सकने में समर्थ होता है और न उसे सक्षम ही बना पाता है ।"[49] आधुनिक व्यक्ति आज स्वच्छंद रूप से चिरण करना चाहता है । वहपरम्परागत किसी भी बन्धन यहाँ तक कि किसी पारिवारिक संबंधों को भी नहीं स्वीकार करना चाहता है । स्वच्छंद यौन चेतना इस भावना को और अधिक तीव्रतर किया है ।इसी उपन्यास में युवा पीढ़ी के प्रतीक गीता व राजेन्द्र रिश्ते में मौसेरे भाई बहन हैं,किन्तु वे वे परस्पर प्रेम विवाह करना चाहते हैं और समाज उनके अनुमति प्रदान नहीं करता तो उनका आक्रोश फूट पड़ता है --" जिसे हम न माने वे सम्बन्ध झूठे हैं,संबंध मन की गहराइयों से होते हैं , चली आ रही परम्परा से नहीं । परम्परा में कोढ़ लग गये हैं और इस कोढ़ का विष हमें जबर्दस्ती क्यों पिलाया जा रहा है"[50] आज व्यक्ति यह स्वीकार नहीं करना चाहता कि जो मान्यता प्राचीन काल में न हो वह आज भी न हो । वह आज समाज को बदलने में संलग्न है,संघर्षरत है । वह चाहता है कि युग परिवर्तन के साथ साथ समाज के भीतरी ढांचे में भी परिवर्तन हो --"माना समाज में ऐसा नहीं होता, पर, इसका यह अर्थ थोड़े ही है कि वह कभी न हो । हम जो चाहेंगे, वही होगा, यही हमारी पीढ़ी की विजय होगी । समाज हमारा दास है, हम समाज के दास नहीं ।[51]

व्यक्ति और समाज में द्वंद्व कथनी करनी की असामानता के कारण भी होता है । पुरानी पीढ़ी आदर्शों, नैतिकता, मूल्यों, दायित्वों आदि का नारा लगाती हुई स्वार्थ पूर्ति में संलग्न है और युवा पीढ़ी को नैतिक आचरण का सबक सिखाती है । किन्तु जब युवा पीढ़ी, सर्वत्र भ्रष्टाचार,दोहरी नीति, भाई भतीजावाद आदि देखती है तो सिवाय विकलता,निराशा,घुटन के अतिरिक्त उसके हाथ कुछ नहीं लगता । पत्थरों के शहर का विवेक इसका सर्वोत्तम उदाहरण है । इसके अतिरिक्त ऋतुचक्र का नकुलेश भी । आज का युवा वर्ग समाज के प्रति ईमानदार होना चाहता है कि वह है नहीं । क्योंकि समाज उसे कुछ दे नहीं रहा है । उसकी अपेक्षाओं ,आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रहा है । इसी कारण युवा वर्ग समाज के प्रति विद्रोह करता है और उसकी सामाजिक,

नैतिक मान्यताओं को नकार रहा है । "नई पीढ़ी अपने प्रति ईमानदार है और समाज के प्रति कुछ नहीं, क्योंकि समाज कुछ नहीं है ।"[52]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीन काल में व्यक्ति समाज को सर्वोपरि मानते हुए "स्व" को समाज पर न्यौछावर कर देने में अपना कर्तव्य समझता था, किन्तु समकालीन व्यक्ति समाज को अपना दास मानते हुये, अपने विकास के लिए समाज को तोड़ने में संकोच नहीं रखता । इस प्रकार समकालीन युग में समाज गौण व व्यक्ति प्रमुख हो गया है । यही कारण है कि समाज से संघर्ष करता हुआ उसके प्रति विद्रोह कर रहा है और सामाजिक मूल्यों को नकार रहा है जिसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में प्रस्तुत करेंगे । हम समाज विषयक द्वंद्व को -रूकोगी नहीं राधिका, कन्दील और कुंहासे, जल टूटता हुआ, आधा गांव, अलग अलग वैतरणी, सूखता हुआ तालाब, मेरी तेरी उसकी बात, आदि उपन्यासों में भी यथार्थ व सूक्ष्म रूप से चित्रित किया गया है । समकालीन उपन्यासों में व्यक्ति और समाज विषयक द्वन्द्व को यथार्थ रूप में अंकित किया है । द्वितीय कोटि के उपन्यासकारों ने प्रथम कोटि के उपन्यासकारों की अपेक्षा इस द्वंद्व को युवा पीढ़ी के माध्यम से कहीं अधिक चित्रित किया है । समाज में नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी की बौखलाहट व द्वन्द्व को चित्रण करने में दोनों कोटि के उपन्यासकार अधिकांश मात्रा में सफल होते हैं ।

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत अध्याय के समग्र विवेचन से स्पष्ट है कि सन् 1960 के पश्चात् के उपन्यासों में व्यक्ति का एक नया व्यक्तित्व उभर कर सामने आया । इससे हिन्दी उपन्यासों को एक नयी दिशा, नया शिल्प और नयी मानसिकता मिली । समकालीन उपन्यासों व्यक्ति चेतना एवं बौद्धिकता से प्रभावित सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मर्यादाओं, तथा मूल्यों को नवीन रूप नवीन चेता के साथ अंकित किया गया है । आज बौद्धिकता एवं वैयक्तिक चेतना के कारण

मानवता,सहयोग, साहचर्य, सद्भाव, ईमानदारी, अच्छाई, आदि मूल्यों के स्थान पर व्यक्ति मन में "अर्थगत" व "कामगत" आधार पर स्वच्छंद यौन वृति स्वार्थ लिप्सा, बौद्धिकता तीव्रतर होती जा रही है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति, एकाकीपन, अजनबीपन, घुटन, मानसिक कुण्ठा व तनाव मूल्यहीनता दिशाहीनता आदि का अनुभव करने लगा है । जिसके कारण प्राचीन परम्परागत सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य अस्तित्वहीन से होते जा रहे हैं । सामाजिक संबंधों के साथ साथ दाम्पत्य मूल्यों में भी बिखराव आया है । यहाँ यह कहना उचित होगा कि विज्ञान ने बाह्य धर्माडम्बरों एवं अज्ञानजनित मूल्यों को तहस-नहस कर स्वस्थ एवं तर्कप्रधान मूल्यों को आधुनिक समाज में स्थापित किया । "यों अब तक भारतीय समाज में परम्परागत मूल्य और मापदण्ड विद्यमान हैं, किन्तु सूखी लकड़ी की तरह है, जो भस्मसात् होने के लिए चिनगारी की प्रतीक्षा में है ।"[53] अतः वैज्ञानिक जीवन दृष्टि ने जीवन मूल्यों को विकसनशील बनाया । इस प्रकार विज्ञान ने जहाँ एक ओर व्यक्ति मन में चेतना जागृत की वहीं दूसरी ओर उसे हृदयहीन बना दिया । परिणामतः व्यक्ति के सम्बन्ध भावनात्मक धरातल पर बिखरते हुए, बौद्धिक धरातल पर उतर रहे हैं । इसने ही नैतिकता की मान्यताओं को तोड़ते हुये व्यक्तिगत जीवन में स्वच्छंद यौन वृति को प्रोत्साहन दिया । इन समस्त परिस्थितियों का चित्रण "नदी फिर बह चली", "मंत्रबिद्ध", "कन्दील और कुंहासे", टूटती हुई ईकाईयाँ, 27 डाउन, जल टूटता हुआ , तमस, एक चूहे की मौत, रीछ, अपना मोर्चा आदि उपन्यासों में मिलता है ।

अंत में निष्कर्षतः यह लक्ष्य किया जा सकता है कि प्रायः पूर्ववर्ती लेखकों ने अपने समकालीन उपन्यासों में यद्यपि व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं व्यक्तिगत नये दृष्टिकोणों को उभारा है, तथापि वे सामाजिक दायित्व, साहचर्य,सद्भाव सहयोग, त्याग, प्रेम, आदर्श आदि मूल्यों को भी यथाचित महत्व दिया है । ऐसे लेखकों में नरेश मेहता (यह पथ बन्धु था) ~~अब~~ उतर कथा यशपाल (बारह घण्टे) भगवती चरण वर्मा (प्रश्न और मरीचिका) । इनके साथ साथ सुरेश

सिन्हा §सुबह अँधेरे पथ पर व पत्थरों का शहर§ भी इसी कोटि में आते सकते हैं । जबकि कुछ समकालीन लेखकों ने अपनी कृतियों में सवर्थ समाज की उपेक्षा करते हुए व्यक्तिवादी जीवन-मूल्यों को अपनाया है । इस कोटि में मणि मधुकर §सफेद मेमने§ राज कमल चौधरी §मछली मरी हुई§ कृष्णा सोबती §मित्रोमरजानी§ और सूरजमुखी अँधेरे के§ श्री कान्त वर्मा§दूसरी बार§ ममता कालिया §बेघर§ महेन्द्र भल्ला §एक पति के नोटस§ आदि उपन्यासकार आते हैं । इन दोनों कोटियों के उपन्यासकारों ने व्यक्ति एवं समाज विषय द्वंद्व को यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करते हुये क्रमशः व्यक्तिगत मूल्यों को प्रमुखता देते हुये सामाजिक, धार्मिक ,आध्यात्मिक तथा नैतिक ■ जीवन-मूल्यों का ह्रास दिखाया गया है । और नवीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक जीवन मूल्यों के प्रति नया दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया है ,जिसकी विस्तार से चर्चा अगले अध्याय में की जायेगी ।

-::-

"संदर्भ - सूची"

1- डा0 पुरूषोत्तम दवे : व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ 370
2- उषा प्रियवंदा : रूकोगी नहीं राधिका, पृष्ठ 70.
3- यशपाल : क्यों फंसे , पृष्ठ 32
4- ,, ,, ,, ,,
5- कमलेश्वर : डाक बंगला, पृष्ठ 65
6- यशपाल : क्यों फंसे , पृष्ठ 79
7- अमृतराय : जंगल, पृष्ठ 235
8- भगवती चरण वर्मा : सामर्थ्य और सीमा, पृष्ठ 17
9- यशपाल : बारह घण्टे, पृष्ठ 79
10- श्री लाल शुक्ल : राग दरबारी, पृष्ठ 129
11- डॉ0 ओमकारनाथ श्रीवास्तव :हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष, पृष्ठ 112
12- यशपाल : क्यों फंसे, पृष्ठ 81
13- ,, ,, ,,
14- डॉ0 महावीर दाधीच : आधुनिक और भारतीय परम्परा, पृष्ठ 28
15- सच्चिदानंद : धूमकेतु :माटी के महक , पृष्ठ 42
16- भगवती चरण वर्मा : प्रश्न और मरीचिका, पृष्ठ 53
17- S.Freud : NEW Introductory Lecture :On Psychoanalysis.P
18- मणि मधुकर : सफेद मेमने , पृष्ठ76
19- कृष्णा सोबती = सूरजमुखी अंधेरे के, पृष्ठ 111-112
20- राजकमल चौधरी : मछली मरी हुई , पृष्ठ 119
21- गिरिराज किशोर : चिड़ियाघर, पृष्ठ 96
22- कमलेश्वर : डाक बंगला , पृष्ठ 66
23- मोहन राकेश : अंधेरे बंद कमरे, पृष्ठ 138
24- गुरूदत्त : गिरते महल, पृष्ठ 163
25- राम दरश मिश्र : जल टूटता हुआ, पृष्ठ 67
26- गुरूदत्त : गिरते महल, पृष्ठ 102
27- कमलेश्वर = डाक बंगला , पृष्ठ 65

28- भगवती प्रसाद बाजपेयी : दूखन लागे नैन, पृष्ठ 203

29- अमृत लाल नागर : अमृत और विष, पृष्ठ

30- मोहन राकेश : अँधेरे बंद कमरे, पृष्ठ 298

31- सुरेश सिन्हा : सुबह अँधेरे पथ पर, पृष्ठ 305

32- उषा प्रियंवदा : रूकोगी नहीं राधिका, पृष्ठ 77

33- डॉO लक्ष्मी नारायण लाल : मन वृन्दावन, पृष्ठ 10

34- भगवती चरण वर्मा : सामर्थ्य और सीमा , पृष्ठ 80

35- यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" : चूनर की पीड़ा, पृष्ठ 72

36- ,, ,, ,, ,,

37- भगवती चरण वर्मा : प्रश्न और मरीचिका, पृष्ठ 73

38- रांगेय राघव : दायरे, पृष्ठ 94

39- सुदर्शन मजीठिया : लोहे की लाशे, पृष्ठ 44

40- डॉO लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 178

41- सुरेश सिन्हा : सुबह अँधेरे पथ पर , पृष्ठ 36

42- नरेश मेहता : यह पथ बंधु था, पृष्ठ

43- मोहन राकेश : अँधेरे बंद कमरे, पृष्ठ 85

44- ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ 275

45- सुरेश सिन्हा : पत्थरों का शहर,पृष्ठ 226

46- उषा प्रियवंदा : रूकोगी नहीं राधिका, पृष्ठ 125

47- कृष्णा सोबती : सूरज मुखी अँधेरे के, पृष्ठ 11

48- सुरेश सिन्हा : सुबह अँधेरे पथ पर, पृष्ठ 64

49- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ 64

50- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ 263

51- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ 227

52- श्री लाल शुक्ल : राग दरबारी, पृष्ठ 66

53- डॉO कुमार विमल : अत्यानुधिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 220-221

-::-